सिमरन

भाग - ४

जिज्ञासुओं की आम शिकायत होती है कि सिमरन करते समय या बाणी पड़ते हुए – 'मन नहीं टिकता'।

हम जैसी भी अच्छी या बुरी संगत करते हैं –उसका असर या **रंगत** हमारे मन पर चढ़ती है। यह **'रंगत'** हमारे अंदर **दृढ़** होती जाती है तथा **अनजाने** ही हमारे अन्तःकरण की गहराई में उतरती जाती है। अन्तःकरण में, कम्प्यूटर (computer) की भांति **स्वयं भरी इस 'रंगत' का 'प्रतिबिम्ब'** (reflection) हमारे –

तन
मन
विचारधारा
क्रियाओं

द्वारा **अनजाने ही, सहज ही प्रकट होता रहता है** जिस कारण मन और भी **चंचल** होता जाता है।

अन्तःकरण में से **'भड़ास' का निकलना** तो हमारे बस से बाहर है, परन्तु हम **बाह्य कुसंगति से तो अलिप्त रह ही सकते हैं। दैवीय संगत** करते हुए धीरे-धीरे अन्तःकरण की रंगत भी **बदल** सकती है।

जब 'जीव' **ईश्वर को भूल जाता है** या उससे **'विमुख'** हो जाता है तो उस पर 'भ्रम-मयी' **माया की परछाई** पड़ जाती है। **ईश्वरीय अस्तित्व** की **याद के स्थान पर, अहम् का 'गिलाफ'** चढ़ जाता है

तथा हम जो भी सोचते, विचारते या कर्म करते हैं उस पर **माया का रंग चढ़ जाता है ।** इस प्रकार हम ''जो मै कीआ सो मै पाइआ'' के अटॅल 'हुक्म' (नियम) के अनुसार दुख-सुख, खुशी-गमी, स्वर्ग-नरक आदि भोगते हैं ।

ईश्वरीय याद अथवा 'सिमरन' के बिना हमारा मन **अनेक चिंतन** के कारण कमजोर तथा चंचल हो जाता है तथा **'अहम्' के केन्द्र के इर्द-गिर्द घूमता रहता है ।** माया की भ्रांति में फंसा हुआ मन, **कर्मबद्ध होकर दुख भोगता है।**

माइआ किस नो आखीऐ किआ माइआ करम कमाइ ।।
दुखि सुखि एहु **जीउ बधु है** हउमै करम कमाइ ।। (पृ. ६७)

इस प्रकार माया का सबसे **बड़ा दोष** यह है कि हमारा मन इसके **चमत्कार तथा लुभावने** रंग के कारण **भ्रम में फंस** कर अपने मूल **अकालपुरुष को भूल जाता है,** हम दुख-सुख, जीवन-मरण के चक्कर में विचरण करते हैं, जिससे छुटकारा पाना अत्यन्त कठिन है ।

इन्हि माइआ जगदीस गुसाई तुम्हरे चरन बिसारे ।।
किंचत प्रीति न उपजै जन कउ जन कहा करहि बेचारे ।।
(पृ. ८५७)

एह माइआ जितु हरि विसरै मोहु उपजै भाउ दूजा लाइआ ।।
(पृ. ९२१)

हमारा मन पानी की भांति है । पानी जिस प्रकार की **संगति करता है,** वैसा ही हो जाता है, जैसे ठंडा, गरम, मीठा, कड़वा, काला, सफेद आदि, अर्थात हमारा मन **जैसी संगति** करता है, वैसे ही हमारे विचार, भावनाएं, वासनाएं तथा कर्म होते हैं तथा हम उसी के अनुसार अच्छा बुरा फल भोगते हैं ।

जो जैसी संगति मिलै सो तैसो फलु खाइ ।। (पृ. १३६९)

इस प्रकार हमारा मन जिस सतह या दर्जे पर विचरण करता है उसका असर या रंगत हमारे मन पर अथवा **अन्तःकरण में दृढ़ होती जाती है ।** इसलिए हर प्रकार की अच्छी या बुरी संगत का **चुनाव करना आवश्यक है ।**

अच्छी या उत्तम संगति वही है जिस से ऊँचे-पवित्र दैवीय आत्मिक विचार उत्पन्न हों तथा हमारे मन की रुचि को अपने केन्द्र ईश्वर से **जुड़ने की प्रेरणा मिले,** जो उसकी याद या **'सिमरन' में सहायक हो ।**

साधसंगत तथा सिमरन करते हुए, ज्यों-ज्यों हमारा मन निर्मल होता जाएगा हमारी **'निर्णय शक्ति'** का विकास होता जाएगा तथा हम तुच्छ विचारों तथा dek से बचने का प्रयास करेंगे । इसीलिए गुरबाणी में 'साध-संगति' या 'सत-संगति' करने का आदेश है –

करि साधसंगति सिमरु माधो होहि पतित पुनीत ।। (पृ. ६३१)

मिलु साधसंगति भजु केवल नाम ।। (पृ. १२)

संता संगति मिलि रहै ता सचि लगै पिआरु ।। (पृ. ७५६)

ठीक इसके विपरीत **'माया'** की **कुसंगति** है । इस कुसंगति में हम इतने गलतान एवं लिप्त हो गए हैं कि हमें 'ईश्वर' की, उसके दिव्य गुणों की तथा सतसंगति की **आवश्यकता ही अनुभव नहीं होती ।**

माइआ जालु पसारिआ भीतरि चोग बणाइ ।।
त्रिसना पंखी फासिआ निकसु न पाए माइ ।।
जिनि कीता तिसहि न जाणई फिरि फिरि आवै जाइ ।। (पृ. ५०)

मनु माइआ मै फधि रहिओ बिसरिओ गोबिंद नामु ।।
(पृ. १४२८)

यह **दोनों दशाएं – 'दैवीय संगति' तथा 'मायकी कुसंगति' एक दूसरे के ठीक विपरीत तथा विरोधी हैं ।**

एक दैवीय गुणों की ओर प्रेरित करती है तथा ईश्वर की याद और **सिमरन में सहायक है ।**

दूसरी, इसके ठीक विपरीत माया में गलतान करके **ईश्वर को भुला देती है।**

काहू की संगति मिलि जीवन मुकति होइ
काहू की संगति मिलि जमपुर जात है। (वा.भ.गु. ५४९)

इसलिए जिज्ञासुओं को **'मायकी कुसंगति' से बचना या अलिप्त रहना आवश्यक है ।** 'बगीचे' के **बाहर 'बाढ़' लगाना जरूरी है,** नहीं तो साथ-साथ **मायकी-वासनाओं की कुसंगति के 'हिरन'** उसे प्रफुल्लित नहीं होने देंगे या पूरा ही उजाड़ देंगे ।

ते साकत चोर जिना नामु विसारिआ
मन तिन कै निकटि न भिटीऐ ।। (पृ. १७०)

साकत संगु न कीजई पिआरे जे का पारि वसाइ ।।
जिसु मिलिऐ हरि विसरै पिआरे सो मुहि कालै उठि जाइ ।।
(पृ. ६४१)

'मायकी कुसंगति' से बचने के लिए **'अलिप्त विचरण' की विधि सीखनी पड़ेगी, इस विषय में गहराई से विस्तारपूर्वक विचार करने की आवश्यकता है ।**

1. व्यक्तियों की कुसंगति :–

यह तो आम माना जाता है कि हम जैसे व्यक्ति की संगति करते हैं **उसी जैसे बन जाते हैं ।**

क्योंकि दो साथियों में से जिसका मन प्रबल होगा, उसकी रंगत दूसरे कमज़ोर मन पर चढ़नी आवश्यक है । एक दूसरे के मन पर मानसिक किरणों (mental vibrations) का असर होता है । क्योंकि दुनिया में **मायावी रंग वालों की बहुलता है,** इसलिए जिज्ञासुओं के लिए

आवश्यक है कि वह दुनिया में रहते हुए **कम से कम लोगों से व्यवहार** (involvement) **रखें अथवा अलिप्त रहें।**

कबीर साकत संगु न कीजीऐ दूरहि जाईऐ भागि ।।
बासनु कारो परसीऐ तउ कछु लागै दागु ।। (पृ. १३७१)

इस प्रकार हम, व्यक्तियों की कुसंगति से काफी हद तक **बच** सकते हैं, अलिप्त रह सकते हैं । परन्तु सच तो यह है कि हम जानबूझ कर व्यर्थ ही दुनिया में समाज (society) के दायरे तथा मायकी झमेले बढ़ाई जाते हैं । इस प्रकार दुनिया के **व्यर्थ झंझटों में उलझ कर अपना अमूल्य जीवन व्यर्थ गवा रहे हैं ।**

जिज्ञासु के लिए जरूरी है कि वह अपने सम्बन्धियों तथा मित्रों की जान-पहचान के दायरे **सीमित करके** मन के मायकी **रुझान कम करें ।** सम्बन्धियों तथा मित्रों की मोह माया की **रस्सियों को ढीला करते हुए** इन से **'अलिप्त रहने' की विधि सीखें** – वरना हमारा मन इनका ही **'निशाना' बना रहेगा** तथा चंचल होता रहेगा ।

इहु कुटंबु सभु जीअ के बंधन भाई भरमि भुला सैंसारा ।।
(पृ. ६०२)

''कबीर हमरा को नही हम किसहू के नाहि'' वाला सबक सीख कर हम इस दुनिया से अलिप्त रह सकते हैं नहीं तो ''पलचि पलचि सगली मुई झूठै धंधै मोहु'' वाली हमारी दुर्दशा होगी ।

2. किताबों की कुसंगति :–

कहावत है कि किसी व्यक्ति का 'आचार' जानना हो तो कहीं कुछ पूछने की आवश्यकता नहीं, उसके सिरहाने पड़ी पुस्तकें देख लो । **उन पुस्तकों से स्पष्ट हो जाएगा कि उसकी 'रुचि' या मन की 'रंगत' किस प्रकार की है ।**

यदि कोई पुस्तक दुबारा पढ़ी जाए तो **पक्का निश्चय हो** जाता है कि पढ़ने वाले का 'आचार' पुस्तक में छपे **विचारों तथा भावनाओं**

की रंगत वाला ही है, चाहे ऊपर से वह कैसा भी बना फिरे ।

इस प्रकार कौम, देश तथा विश्व के **आचार और व्यवहार के विषय में जाना जा सकता है ।** जिस कौम अथवा देश में जैसा 'साहित्य' अधिक पढ़ा जाए अथवा उनकी रुची जिस **साहित्य को पढ़ने की हो,** या जिस प्रकार का साहित्य प्रचलित हो – **उस देश तथा कौम का आचरण या व्यवहार भी वैसा ही होता है ।**

इस कलयुग में **मायकी रंगत** अथवा तुच्छ रुचियों तथा भावनाओं वाला साहित्य बहुत अधिक मात्रा में छपा हुआ है, जिसे पढ़कर जीव मायकी रंगत वाली तुच्छ **भावनाओं तथा विचारों के 'बहाव' में सहज ही बहे जा रहे हैं ।** वह **'ईश्वर'** को भूल जाते हैं तथा **'सिमरन'** की उन्हें कोई आवश्यकता अनुभव नहीं होती ।

तीनि भवन महि एका माइआ ।।
मूरखि पड़ि पड़ि दूजा भाउ दिड़ाइआ ।। (पृ. ४२४)

इन पुस्तकों की 'संगति' घर बैठे-बैठे भी हो सकती है तथा इनका **'असर' भी देर तक रहता है ।** इसलिए जिज्ञासुओं को इन **तुच्छ रुचियों** की **रंगत** वाली पुस्तकों से **परहेज रखना चाहिए तथा अलिप्त रहना चाहिए ।**

होरु कूड़ु पड़णा कूड़ु बोलणा माइआ नालि पिआरु ।।
नानक विणु नावै को थिरु नही **पड़ि पड़ि होइ खुआरु ।।**
(पृ. ८४)

मूरख दुबिधा पढ़हि मूलु न पछाणहि बिरथा जनमु गवाइआ ।।
(पृ. ११३३)

इसके विपरीत उत्तम 'दैवीय रंगत' वाली पुस्तकें हरि-गुण, हरि-कथा तथा गुरबाणी का अभ्यास करना चाहिए –

हरि गुण पड़ीऐ हरि गुण गुणीऐ ।।
हरि हरि नाम कथा नित सुणीऐ ।। (पृ. ९५)

हरि पड़ु हरि लिखु हरि जपि हरि गाउ
हरि भउजलु पारि उतारी ।। (पृ. ६६९)

3. वासनाओं की कुसंगति :–

गुरबाणी में लिखवा है –

बिखै बिखै की बासना तजीअ नह जाई ।।
अनिक जतन करि राखीऐ फिरि फिरि लपटाई ।।
(पृ. ८५५-५६)

पानी का स्वभाव है 'संगति' का असर लेना तथा ढलान की ओर बहना । इसी प्रकार मन का स्वभाव कुसंगति का असर लेना व तुच्छ रुचियों के बहाव में बहना है । कलयुग में विषय-विकारों की जबरदस्त लहरें चल रही हैं । इसलिए हमारे कमज़ोर मन इन **तुच्छ विषय-विकारों की लहरों से बच या अलिप्त नहीं रह सकते।** इनसे बचने या अलिप्त रहने का एकमात्र साधन है –

साधसंगति कै अंचलि लावहु बिखम नदी जाइ तरणी ।।
(पृ ७०२)

4. मृतकों की कुसंगति :–

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में निकटवर्ती सम्बन्धियों, जैसे मां-बाप, भाई-बहन, पति-पत्नी, बच्चों, मित्रों आदि की मृत्यु होती रहती है, इनमें से कुछ का तो मन पर अत्यन्त दुख तथा सदमा होता है । ऐसी दुखदाई मृत्यु को **बार-बार याद करके** जीव उनके **मोह में अत्यन्त दुखी होते रहते हैं ।**

ऐसे मोह-माया वाले **मृतकों की याद** हमारे अन्तःकरण के किसी कोने में बसी रहती है, जिन्हें हम **मोह की भावनाओं** से ताजा करते रहते हैं तथा इनकी **'याद' के द्वारा 'कुसंगति' करके दुख-कलेश भोगते हैं ।**

हम **मृतकों को याद करके** उनके **अवगुणों की चर्चा** भी करते रहते हैं। इस प्रकार हम उन मृतकों की **कुसंगति** ही नहीं करते बल्कि उनके **'अवगुणों' को भी ग्रहण करते हैं तथा अपना मन मैला करते हैं।**

इसलिए हमें चाहिए कि **मृतकों को भुला दें,** तब ही हम उनकी कुसंगति से **अलिप्त** रह सकते हैं।

मूए कउ रोवहि किसहि सुणावहि
भै सागर असरालि पइआ ।। (पृ. ९०६)

5. ख्यालों की मानसिक कुसंगति :–

ख्याली कुसंगति (thoughts) व्यक्तियों तथा किताबों की कुसंगति से भी **अधिक हानिकारक तथा प्रभावशाली कुसंगति है।** इसलिए इस विषय में गहन विचार करने की आवश्यकता है –

व्यक्तियों तथा पुस्तकों की कुसंगति से तो हम किसी प्रकार बच भी सकते हैं, जैसे 'त्यागी साधु', 'अनपढ़ लोग', परन्तु ख्याली 'कुसंगति' से बचना अत्यंत कठिन है।

मन अति सूक्ष्म तथा पारे की भांति चंचल है – यह एक क्षण भी नहीं टिकता। किसी शारीरिक कार्य के बिना भी यह मन **अपनी रुचियों के अनुसार किसी न किसी प्रकार के विचारों में व्यस्त तथा गलतान रहता है।** इस प्रकार हम सदा ही **तुच्छ रुचियों के कारण व्यर्थ ही दुनिया में लिप्त रहते हैं।**

ख्यालों की दो तह होती हैं –

1. **ऊपरी मन के ख्याल** (superflous thoughts) – जो आते जाते रहते हैं।

2. **गहरे ख्याल** – जिन्हें हम **बार-बार याद करके घोट-घोट कर** अपने मन की गहराइयों में जमा कर लेते हैं तथा उन ख्यालों की

हमारे मन में **फाइलें** (case files) बन जाती है ।

उदाहरणतः यदि किसी ने हमारे साथ बुरा व्यवहार किया हो या कोई ताना दिया हो तो हम उसी 'ताने' या विरोधी बात को **बार-बार याद करके** अपने मन पर उस **'रोष' को और अधिक गहरा अंकित करते जाते हैं ।** इसका परिणाम यह होता है कि जब भी वह ताने देने वाला हमारा विरोधी हमें **याद आ जाए** तो उस **तीक्ष्ण रोष** का हमारे मन पर अत्यंत गहरा तथा दुखदायी असर होता है तथा हमारा मन **ईर्ष्या, द्वेष, नफरत, क्रोध और एलरजी की आग में जलता भुनता है ।** इस प्रकार हर बार जब **हम उस 'फाईल' को खोलते हैं तो हमारे मन की रंगत और अधिक गहरी तथा पक्की होती जाती है ।** कुछ समय बाद यह **'रोष'** हमारे अन्तःकरण में उतर जाता है । तब चाहे **'रोष' का कर्ता** हम से दूर भी हो, तो भी अचानक उस रोष की **याद आते ही या ध्यान आते ही हमारे मन पर बहुत बुरा असर होता है** और हम नफरत, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष में जलते-भुनते, कुड़ते हुए **मन को** और **अधिक मैला किये जाते हैं** तथा दुखी होते रहते हैं ।

दुखदायी बात यह है कि इस प्रकार के **'रोष'** तथा **फाइलें एक दो नहीं** बल्कि **अनेक हैं** जिन्हें हम अपने हृदय में जमा रखते हैं और जब भी मन ऊपरी काम-काज से फुर्सत पाता है, इन शक्तिशाली गिले **शिकवों तथा रोष की 'दुर्गन्ध' उभर कर आ जाती है** तथा हमारे **मन को और भी जला देती है।** यहां महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि शारीरिक संगति किये बिना यह **केवल 'ख्याली संगति' का ही परिणाम है ।**

ख्यालों की कुसंगति व्यक्तियों की कुसंगति से कहीं अधिक दुखदायी, खतरनाक, बिखम तथा गहरे असर वाली है तथा **'अलिप्त'** रहने के **विपरीत** है । परन्तु हम इसी ख्याली कुसंगति में भली प्रकार गलतान रहते हैं । इसी कारण हमारे मन में दैवीय गुणों वाली **धार्मिक रुचि** बिलकुल पैदा ही नहीं होती या फिर **नाम-मात्र** ही होती

है । इस प्रकार 'ईश्वर' या उसका **'सिमरन' करने का ख्याल या जरूरत ही नहीं अनुभव होती** तथा 'सिमरन' में मन **कदाचित नहीं जुड़ता ।**

इस दुर्दशा से बचने का **एकमात्र इलाज है** – जब भी कोई रोष, गिला, ताना, शिकायत आदि मन में आए तो उसे तत्काल **'चलो जाने दो' 'कोई बात नहीं' कह कर भुलाने का प्रयत्न करना चाहिए तथा फिर दुबारा बार-बार याद नहीं करना चाहिए,** क्योंकि जितनी बार किसी ख्याल को, विचार को याद किया जाए, वह हमारे हृदय की **गहराईयों में धँस** जाता है, फिर उस बात को मिटाना या **उससे बचना तथा अलिप्त रहना कठिन हो जाता है ।**

तुच्छ विचारों की रंगत से बचने या 'अलिप्त रहने' के लिए दैवीय गुणों को ग्रहण करने की **ताकीद** इस प्रकार की गई है –

'रोसु न काहू संग करहु'
'पर का बुरा न राखहु चीत'
'बुरे दा भला करि गुसा मनि न हंडाइ'
'पर निंदा सुणि आपु हटावै'
'साझ करीजै गुंणह केरी छोडि अवगुण चलीऐ'
'दया छिमा तन प्रीति'
'निंदा भली किसै की नाही'
'देख के अणडिठ करना'
'सुण के अणसुणा करना'

हम अपने मन की वास्तविक अधोगति से **बिल्कुल बेपरवाह तथा अनजान हैं** तथा इसकी ओर ध्यान देने की भी हमें आवश्यकता नहीं अनुभव होती । हम जान बूझ कर अनजान या मस्त होकर अपनी आदतों तथा **संस्कारों के बहाव में अंधाधुंध बहे जा रहे हैं ।** अनोखी बात तो यह है कि जहां हम खुद अज्ञानता में 'पलचि पलचि सगली मुई झूठै

धंधै मोहु' में बहे जा रहें हैं वहां **दूसरों पर नुक्ताचीनी करने या दोष लगाने के लिए तत्पर रहते हैं ।** अपने अहम व बुद्धि के सींग तीखे करके दूसरों से लड़ने के लिए तैयार रहते हैं तथा **इसी में अपना बढ़प्पन और मान समझते हैं ।** ऐसी मानसिक ग्लानि में लिप्त रहना **'अलिप्त' रहने के ठीक विपरीत है ।**

हमारी मानसिक दुनिया में एक अन्य बुराई यह है कि हम व्यर्थ, फिजूल तथा बेकार बातों में अपना अमूल्य समय गंवा रहे हैं । जहां पुरुष अपने कारोबार सम्बन्धित, राजनैतिक या समाजिक मामलों में व्यर्थ बहस करने में समय बर्बाद करते हैं वहां स्त्रियां खान-पान, कपड़े-गहने तथा बच्चों, सम्बन्धियों की बातों या चुगली-निंदा आदि में गलतान रहती हैं । **इस प्रकार किसी को भी 'अलिप्त रहने' की कला का ज्ञान ही नहीं ।** इसी कारण हम धर्म के **दैवीय गुणों अथवा नाम-सिमरन से दूर जा रहे हैं ।**

यदि किसी ने शहरों में 'सट्टे का बाजार' देखा हो तो उसे पता होगा कि वहां बहुत से व्यापारी एकत्र होते हैं तथा ऊँची-ऊँची बोलियां लगाते हैं । जिस कारण वहां **खूब शोर-गुल रहता है ।**

ठीक इसी प्रकार हमारे मन रूपी 'सट्टे के बाजार' में कई प्रकार के व्यक्तियों, ख्यालों या परमार्थ के मायकी व्यापारियों ने **दिन रात हलचल मचाई हुई है जिस कारण हमारा मन एक क्षण के लिए भी नहीं टिकता ।** यह ऊपरी, ख्याली, **बेकार 'दुनिया'** हमने स्वयं ही अपने मन में **बसाई हुई है** तथा इस **स्वयं आमंत्रित** ख्याली, व्यर्थ, **दुखदायी दुनिया में ही हमारा मन हर समय लिप्त रहता है ।**

इनसे बचने का किसी को **ध्यान ही नहीं** आता न ही **आवश्यकता अनुभव होती है ।** इस विषय में गुरबाणी हमें यूँ उपदेश देती है –

सेखा चउचकिआ चउवाइआ एहु मनु इकतु घरि आणि ।।
एहड़ तेहड़ छडि तू गुर का सबदु पछाणु ।। (पृ. ६४६)

चिंतत ही दीसै सभु कोइ ।।
चेतहि एकु तही सुखु होइ ।। (पृ ९३२)

पर हम गुरबाणी के उपदेश **ऊपरी मन से पढ़-सुन लेते हैं ।** इनके आंतरिक भाव की ओर ध्यान नहीं देते –न ही इनको **व्यवहार में लाने** का रव्याल हमारे मन में आता है ।

हमारे अहमग्रस्त मन को गुरू साहिब ने 'सेवा चउचकिआ चउवाइआ' के **तीव्र कटाक्ष भरे शब्दों द्वारा** सम्बोधित करके **ताड़ना दी है** कि अनेक रूझानों में लिप्त होकर **कुसंगति** करने की अपेक्षा ''इकतु घरि आणि'' की शिक्षा ले अर्थात 'अनेक चिंतन' छोड़कर 'एक चिंतन' में मन लगाना है तभी **सिमरन की क्रिया सफल हो सकती है ।**

सर्दियों में हम ठण्ड से बचने के लिए गरम कपड़े तथा रजाई आदि का प्रयोग करते हैं । कई बार हम देखते हैं कि सोते समय यदि किसी तरफ से भी रजाई का कोना उठ जाए तो वहीं से ठंड लगने लगती है । इसलिए सर्दियों में हम गरम तथा मंहगें कपड़े खरीदते हैं पर यदि ध्यान से देखा जाए तो वास्तविक्ता का पता चलता है कि वास्तव में गरम कपड़े या रजाई की अपनी कोई **गरमी नहीं होती** बल्कि गर्मी तो **हमारे शरीर** में ही है । यह **शारीरिक गरमी** तो हमारे अन्दर ही मौजूद है, परन्तु जब बाहर की ठंडी हवा लगती है तो यह **गरमी उड़ जाती है** (neutralise) या व्यर्थ चली जाती है तथा हमें ठण्ड अनुभव होती है ।

इस 'बाहर की ठंडी हवा' व 'भीतरी शारीरिक गरमी' के बीच यदि कोई रुकावट या बचाव हो जाए तो 'बाहर की ठण्ड' बाहर तथा **'अन्दर की शारीरिक गरमी'** अन्दर ही बनी रहेगी । इस प्रकार बाहर की ठण्ड तथा अन्दर की गरमी के मध्य एक पर्दे (insulation) की आवश्यकता होती है, तांकि एक दूसरे का **मेल न हो सके।**

ठीक, इसी प्रकार हमारी अन्तरात्मा इलाही प्रीत-प्रेम-रस-चाव का स्रोत है परन्तु हम इन दैवीय गुणों से वंचित जा रहे हैं क्योंकि हमारे मन की सुरति-

वृत्ति **'बाह्यमुखी' होने के कारण** हम इन इलाही गुणों – प्रेम, आत्मिक रंग-रस-चाव के सुख से **अनजान** हैं। यही कारण है कि हमारा मन बाहरमुखी मायकी-मंडल में रहते हुए इतना 'चंचल' और मलिन हो गया है कि इसे **टिकने या एकाग्र होने का ख्याल ही नहीं आता ।**

जन्मों-जन्मों से यह मन उल्टा **'मायकी चर्खा'** चलाता रहा है इसलिए इसकी बाहरमुखी चंचल वृत्तियों को मोड़कर एकाग्र करना **कठिन है** तथा **वृत्तियों को अन्तरमुखी एकाग्र किये बिना सिमरन में मन लग ही नहीं सकता ।** जिसके फलस्वरूप शब्द-सुरति का मेल नहीं हो सकता ।

हमारे अन्दर 'आत्मिक ज्योति' निर्मल है जो सर्वगुण-सम्पन्न है । जब इस ज्योति के ऊपर **'अहम्' का आवरण** चढ़ जाता है तो तुच्छ बाहरमुखी मायकी ख्यालों की **रंगत या मैल अपने आप चढ़ती जाती है । इसी अहम् के 'आवरण'** को 'मन' कहा जाता है । ज्योति का प्रकाश तो निर्मल होता है परन्तु 'बल्ब' के मैले शीशे अथवा 'मन' में से जो प्रकाश बाहर की और प्रकाशित होता है वह धुंधला और मैला होता जाता है । इस प्रकार ज्यों-ज्यों **मलीन विचारों तथा तुच्छ रूचियों से हमारे मन का 'बल्ब' मैला होता जाता है त्यों-त्यों हमारे मन के भ्रम-भुलाव का अन्धकार बढ़ता जाता है ।**

इसके विपरीत ज्यों-ज्यों हम अन्तरमुखी होकर **'एक-चिंतन'** द्वारा अपने इलाही केन्द्र 'आत्मा' की ओर **रुख करेंगें** अर्थात उस इलाही ज्योति के अस्तित्व की याद या सिमरन करेंगें तो हमारी –

अज्ञानता का अन्धकार कम होता जाएगा ।
भ्रम दूर होते जाएंगें ।
मन की मैल घटती जाएगी ।
तुच्छ रुचियां कम होती जाएंगी ।
इलाही गुण प्रवेश होते जाएंगे ।

हम इलाही मंडल की कृपा के पात्र बनते जाएंगें ।
सतिगुरू की बरख्शिशों का प्रवाह चल पड़ेगा ।
'शब्द-सुरति' लीनता प्राप्त होगी ।
आत्म मण्डल के वासी हो जाऐंगें ।

वास्तव में मन को **'हरी अंगूरी'** की भांति **मज़ेदार** स्वादिष्ट 'चाट' चाहिए, जिससे वह रस प्राप्त कर 'अलमस्त मतवारा' हो सके । जब तक उसे **इससे उत्तम, बढ़िया, स्वादिष्ट दैवीय चाट न प्राप्त हो** तब तक इसका तुच्छ रुचियों, रस-कस की कुसंगति में लिप्त रहना अनिवार्य है –

इह रस छाडे उह रसु आवा ।।
उह रसु पीआ इह रसु नही भावा ।। (पृ. ३४२)

इसलिए तुच्छ रस कस वाली 'चाट' पर मोहित हुए मन को किसी ऊँचे, पावन प्रीत-प्रेम-रस-चाव अथवा **नाम-सिमरन** की तरफ प्रेरित करने के लिए उस पर **दैवीय-गुणों की 'प्योंद'** (grafting) **लगाने की आवश्यकता है** – जिससे हमारा जीवन उत्तम, सुन्दर, सुखदायी तथा कल्याणकारी हो सकता है ।

यह **'दैवीय कलम'** केवल बख्शे हुए गुरमुख-प्यारों, महापुरुषों की संगत में ही लग सकती है, **जो स्वयं सदा नाम सिमरन** में लीन होकर इलाही **'प्रेम-सवैपना' का रंग रस पीते हैं ।** साध संगत द्वारा ही हम **मायकी ग्लानि से बच सकते हैं** तथा 'सिमरन' में हमारा **मन टिक सकता है ।**

साधसंगति बिना भाउ नही ऊपजै
भाव बिनु भगति नही होइ तेरी ।। (पृ. ६९४)

- क्रमशः